ऊँची बोली

दीपक शर्मा

ऊँची बोली

समाचारों में माँ को उनकी हत्या लाई थी। कारण दो थे। पहला, पप्पा ने माँ के लापता होने पर दर्ज करवाई गई अपनी एफआईआर में जिस बृजलाल का नाम संभावित अपहर्ता के रूप में लिया था उसी दिन दर्ज की गई दो और एफआईआर में भी वही बृजलाल नामित पाया गया था। बृजलाल के मालिक रजत सिंह ने जहाँ उसके गायब

होने की सूचना लिखवाई थी वहीं रजत सिंह के ससुर ठाकुर रणविजय सिंह ने उस पर स्कोर्पियो मॉडल की अपनी एक एसयूवी को चोरी करने का आरोप लगाया था।

दूसरा कारण ज्यादा सनसनीखेज था। माँ का शव दो टुकड़ों में मिला था और वह भी अलग-अलग स्थान और समय पर। धड़ पहले हाथ लगा था। पप्पा की एफआईआर के बीसवें दिन। हमारे कस्बापुर से छह किलोमीटर दूर पड़ने वाले एक ताल में। निर्वस्त्र। बुरी तरह फूला हुआ। दोमुँहे छुरों से क्षत-विक्षत। सिर उसके भी डेढ़ माह बाद ढूँढ़ निकाला था। उसी ताल से बारह किलोमीटर आगे। आधा जमींदोज और आधा झाड़ियों में फँसा। चेहरे का मांस जगह-जगह से नुचा हुआ। आँखों की जगह गड्ढे। बाल नदारद। केवल दाँत बचे थे।

और जैसे ही डीएनए एवं पोस्टमार्टम रिपोर्टों ने स्थापित किया था कि वह धड़ और वह सिर मेरी माँ के ही थे और पुलिस ने माँ की हत्या के विवरण तथा ठाकुर रणविजय सिंह की एसयूवी समेत रजत सिंह के ड्राइवर बृजलाल के गायब होने की बात सार्वजनिक की थी, देश के लगभग सभी समाचार सूत्रों ने अपने-अपने अनुमान जनता के सामने रख दिए थे।

कुछ का अनुमान था कि अपनी हत्या से पहले माँ किसी अपराधी गिरोह के सामूहिक बलात्कार की शिकार हुई थीं। तथा उन्हीं अपराधियों ने तिरसठ वर्षीय बृजलाल को भी मार डाला था और उस एसयूवी के कल-पुर्जे अलग-अलग करके बेच दिए थे।

अपनी अटकलबाजी में दूसरे स्रोत कह रहे थे कि माँ की हत्या उनके अवैध गर्भ धारण का दुष्परिणाम थी; तथा उस हत्या को अंजाम देने वाले पेशेवर हत्यारे थे - बृजलाल की जानकारी में। उसी जानकारी की एवज में उसे एसयूवी के साथ चंपत हो जाने की आज्ञा भी दे दी गई थी। इस अटकल में भी कुछ के अनुसार हत्यारों को अपना भाड़ा रजत सिंह से मिला था और कुछ के अनुसार रणविजय सिंह से।

"सैक्रेटरी साहिबा को रजत भैया ने याद किया है।" माँ के लापता होने वाले रविवार के दिन बृजलाल ने हमारे घर में कदम रखते ही माँ को रजत सिंह का संदेश कह सुनाया था, "ठाकुर साहब अपने एक आदमी का केस लाए हैं, उसकी फाइल तैयार करवानी है..."

रजतसिंह पेशे से वकील था और उसके दफ्तर में सभी जन माँ को उसके निर्देशानुसार 'सैक्रेटरी साहिबा' ही पुकारते थे।

"मैं कपड़े बदल आऊँ?" उस समय माँ अल्लम-गल्लम एक गाउन पहने थीं और बाल भी तान-खींच कर क्लिपों में बाँधे हुई थीं, ताकि उनके सीधे बाल छल्लेदार कुंडल नुमा घूमकर घुँघराले बन सकें।

"हाँ, मगर जल्दी आइएगा... ठाकुर साहब जल्दी में हैं। उन्हें फिर आज ही राजधानी वाले अपने बंगले पर लौटना है।"

रणविजय सिंह प्रदेश की राजधानी के सब से बढ़िया क्षेत्र के एक आलीशान बंगले में सपरिवार रहता था, मगर जब भी बेटी-दामाद के पास इधर कस्बापुर आता रात गुजारने के लिए अपने गाँव के फार्महाउस कस्बापुर से बत्तीस किलोमीटर की दूरी पर स्थित उसकी पुश्तैनी जमीन पर बना था।

"मैं जल्दी ही तैयार हो जाऊँगी," माँ ने कहा था, "तब तक तुम बाहर अपनी मोटर में बैठो।"

"ठीक है, मैं उधर गाड़ी में बैठता हूँ।"

माँ नहीं चाहती थीं बृजलाल पप्पा या दादी के पास बैठे या उनसे कोई बात ही करे। उनके कुतुहली प्रश्नों को वह जाने या समझे या जवाब ही देने का प्रयास करे। वह रणविजय सिंह के ही गाँव से था और उसने अपनी ड्राइवरी उसी की एंबेसडर से सन **1971** में शुरू की थी। अगले सत्ताईस वर्ष उसने वहीं गुजारे थे, जब तक कि सन 1998 में रणविजय सिंह ने बेटी को दहेज-स्वरूप दी गई टाटा इंडिका का ड्राइवर उसे नहीं बना दिया था। बेशक गाँव से और रणविजय सिंह से उसका नाता अब भी बराबर बना हुआ था और उसकी हर नई गाड़ी की 'टेस्ट ड्राइव' अब भी उसी के सुपुर्द थी।

"मैं साथ चलूँ?" अपने उस तेरहवें वर्ष में मोटरगाड़ी देखने और उसमें बैठने का मुझे बहुत शौक था। साथ ही उसके मॉडल, गियर और ब्रेक की जानकारी लेने का भी।

अभी दो साल पहले तक मुझे मोटरगाड़ी के किसी भी मॉडल को सीखने-समझने का मौका कभी नहीं मिला था। पप्पा के पास तब एक स्कूटी रही थी जिस पर वह माँ को पीछे बिठा कर उस निजी डायग्नोस्टिक सेंटर पर जाया करते थे जहाँ वह टेक्नीशियन थे और माँ एक रिसेप्शनिस्ट। यह मात्र संयोग था कि जिस दिन रजतसिंह अपने बेटे के खून की जाँच-रिपोर्ट लेने उस डायग्नोस्टिक सेंटर पर गया था। उस दिन माँ के केबिन में उनके साथ बैठने वाली रिसेप्शनिस्ट छुट्टी पर थी, और रजत सिंह वहीं अंदर उसकी खाली कुर्सी पर जा बैठा था और बातों-बातों में उसने माँ को

डायग्नोस्टिक सेंटर से मिलने वाली उनकी तनख्वाह से तिगुनी पर अपनी सेक्रेटरी बनने पर राजी कर लिया था। फिर माँ ने अगले ही माह पप्पा को उनकी स्कूटी से आजाद करते हुए उन्हें अपने दफ्तर से मिले 'एडवांस' से एक नई मोटरसाइकिल दिलवा दी थी। मोटरसाइकिल चलाने की मगर मुझे अनुमति नहीं थी, हालाँकि उसके गियर और ब्रेक इत्यादि की मैं पूरी जानकारी रखता था।

"हाँ, चलो..." बृजलाल ने कहा था।

"यह तो वकील साहब की लैंसर नहीं।" बाहर खड़ी गाड़ी लंबी थी। ऊँची थी। सफेद रंग की थी। और पुरानी भी।

"यह एसयूवी है स्कार्पियो मॉडल की। सन 2002 में नई निकली थी और ठाकुर साहब ने उसी साल इसे खरीद भी लिया था।"

"इसे अंदर से देखूँ क्या?" मैंने कार के शीशे से भीतर झाँकते हुए कहा।

"चाबी लगा लूँ?" बृजलाल ने अपने हाथ की चाबी हवा में उछाली थी।

"हाँ-हाँ... एसी भी चला दीजिए।" मोटरगाड़ी के अंदर के रेडियो और एसी मेरे लिए अजूबों से कम नहीं रहते थे। "इस में एसी कहाँ!" बृजलाल मुस्कराया था।

"क्यों नहीं?" ड्राइवर की सीट के बगल वाली सीट पर बैठते ही मैंने गाड़ी में नजर घुमाई थी। पीछे की सीट में तीन लोग बैठ सकते थे। और उसके पीछे वाली में दो-दो। आमने-सामने।

"एसी इसलिए नहीं क्योंकि वह खराब हो गया था।" बृजलाल हँस पड़ा था।

"मगर इसमें तो कई जन बैठ जाएँ।"

"हाँ, यह सेवन-सीटर एसयूवी है। मतलब स्पोर्ट यूटिलिटी व्हीकल। तुम तो जानते होंगे, स्पोर्ट किसे कहते हैं?"

रजतसिंह की नौकरी हाथ में लेते ही माँ ने मुझे उसी अँग्रेजी स्कूल में दाखिला दिलवा दिया था जहाँ रजतसिंह के चौदह वर्षीय जुड़वाँ बेटे पढ़ते थे। हालाँकि उस नए स्कूल में अपनी कमजोर अँग्रेजी के कारण मुझे दो जमात नीचे जाना पड़ा था छठी जमात से चौथी जमात में। मगर दो वर्ष वहाँ पढ़ते रहने के बाद भी अँग्रेजी मेरी अभी भी बढ़िया नहीं हुई थी।

मैं 'स्पोर्ट' और 'स्पोर्ट्स' का अंतर नहीं जानता था और गलत बोल पड़ा था - "हाँ-हाँ, मैं जानता हूँ 'स्पोर्ट' खेलकूद को कहा जाता है..."

"खेलकूद को नहीं, खाली खेल को। खेल भी तुम्हारे बल्ले-गेंद वाला नहीं। खेल वह जो मन बहलाए - जैसे शिकार, सैर-सपाटा या फिर खाली घुमक्कड़ी।"

"तो क्या एसयूवी में लोग यही सब करते हैं?"

"जब तक यह स्कौर्पियो नई रही थी ठाकुर यह सब भी उसमें करते रहे थे, मगर अब तो यह केवल नौकर-चाकर और सामान ढोने के लिए ही इस्तेमाल की जाती है।"

"माँ को वह नौकर-चाकर के वर्ग की मानते हैं?" मैं आहत हुआ था।

"सच पूछते हो तो वह रजत भैया की भी खास इज्जत नहीं करते। इज्जत करते थे उनके पिता लखनसिंह की। रजत भैया तो बस नाम के वकील हैं, वह थे नामी वकील। पैदा जरूर गरीब किसान परिवार में हुए थे मगर अपनी वकालत की पढ़ाई ऐसी जबरदस्त की कि यश और धन दोनों उनकी झोली में आन गिरे। उनकी साख ही ठाकुर साहब को सन 1996 में उनके पास लाई थी - जमीन-जायदाद के बरसों पुराने एक मुकदमे के जरिए। और बड़े वकील बाबू ने उनका केस ऐसा सँवारा कि दो ही साल के अंदर कचहरी से फैसला उनके पक्ष में ला जुटाया था। ठाकुर साहब को करोड़ों का फायदा हुआ। ऐसे में ठाकुर साहब ने उनकी फीस के साथ अपनी पाँचवीं बेटी का हाथ भी रजत भैया को सौंप दिया था। सोचते रहे होंगे वह भी कि अपने पिता की तरह जिस भी मुकदमे को हाथ में लेंगे जीत ही जीत हासिल करेंगे।"

"तो क्या वह अपने केस जीत नहीं पाते?" मुझे गहरा धक्का लगा था।

"बड़े मुकदमे अब उनके पास आते ही कहाँ हैं? अढ़ाई साल पहले उनके पिता जो चल बसे तो रजत भैया उनका काम सँभाल नहीं पाए। फिर भी उन्हीं की लिहाजदारी में उनके पुराने मुवक्किलों ने पहले के दिए हुए वे पुराने मुकदमे अब भी रजत भैया से वापिस नहीं लिए हैं। बस उनके साथ बड़े वकील लगा दिए हैं, जो रजत भैया को मुकदमे की तारीख लगने पर अपने साथ कचहरी में बुला लिया करते हैं।"

"और माँ जो कहा करती हैं कि वकील साहब को अपने पुराने केस तैयार करने के लिए उधर फार्महाउस पर जाना पड़ता है...?"

माँ को रजतसिंह महीने में दो-एक बार तो रणविजय सिंह के फार्महाउस पर जरूर ले जाया करता था। फार्महाउस की चाबी उसी के पास रहती थी।

"यूँ ही ऐसा बोल रही होंगी, वरना उधर कौन नहीं जानता कि रजत भैया वहाँ काम के वास्ते नहीं जाते मौज के वास्ते जाते हैं..."

तभी बृजलाल का मोबाइल बज उठा था।

"ठाकुर साहब का फोन है। तुम जाओ और सैक्रेटरी साहिबा को फौरन इधर गाड़ी पर भेज दो।"

"भेजता हूँ।" मैं एसयूवी से नीचे उतर लिया था। उतर आए अपने चेहरे के साथ।

अंदर माँ अपने कमरे में लगभग तैयार खड़ी थीं।

अपनी टमाटरी साड़ी से मेल खा रहे अपने होंठ एवं गाल तथा काले ब्लाउज से भी ज्यादा काले अपनी आँखों के काजल एवं बालों के घूँघर संपूर्णतया तप्त एवं तीते बना कर।

"आज फिर रात में देर कर दोगी?" अंदर उमड़ आए अपने क्रोध को बाँधने में मुझे कड़ा प्रयास करना पड़ा था।

परिवार में एक मैं ही था जो माँ से अब भी सवाल-जवाब कर सकता था, वरना पप्पा और दादी को अब वह दो बात बोलने तक का मौका नहीं देती थीं।

"देर नहीं करूँगी तो क्या यह सब बना रहेगा?" परफ्यूम गरदन में छिड़कती हुई वह बोली थीं, "यह फ्लैट, यह फर्नीचर, यह टीवी, यह फ्रिज... तुम्हारा वह नया स्कूल...?"

यहाँ यह बता दूँ कि माँ की इस नई नौकरी के इन दो वर्षों के दौरान उनके वेतन के साथ-साथ उनको मिलने वाले 'एडवांस' में भी बढ़ोतरी हुई थी। यदि एक एडवांस ने मुझे मेरा नया स्कूल दिलाया था तो दूसरे ने हमें एक बदबूदार अँधेरी गली में बने अढ़ाई कमरों वाले पप्पा के पुश्तैनी मकान से निकाल कर यह नया और खुला किराए का फ्लैट उपलब्ध कराया था। तीसरे से यदि उस फ्लैट का नया सामान आया था तो चौथे ने दादी की आँखों से मोतिया हटवाया था।

"और तुम जो यह नया सब खरीदने-पहनने लगी हो?" मेरे क्रोध का बाँध अब टूट गया था, "ज्यादा खाने-खर्चने लगी हो, उसका क्या?"

"जानती हूँ जानती हूँ" माँ थोड़ी झेंप गई थीं, "मूल से ज्यादा अपनी बोली लगवा रही हूँ। मगर जब मौका मिला है तो क्यों थोड़े में गुजारा करूँ? ज्यादा क्यों न चाहूँ? 'कुछ भी' लेकर कैसे बहल जाऊँ... जब मुझे 'सब कुछ' चाहिए..."

"और अगर ससुर ने और भी ऊँची बोली लगा दी**?** अपने फार्महाउस पर आज तुम्हें वहाँ ले जाना चाहा**?"** मैं चिल्लाया था।

"यह कैसी बोली बोल रहा है तू?" अपने दाएँ कंधे पर अपने नए हैंडबैग के दोनों पट्टे टिका रहे उनके हाथ बुरी तरह काँपने लगे थे, "मेरी पीठ पीछे बोली गई यह बोली किसकी है? बृजलाल की? पप्पा की? या तेरी दादी की?"

"मैं अपनी बोली बोल रहा हूँ," गुस्सा मेरे गले तक आ गया था, "क्योंकि मुझमें हौसला है, हिम्मत है। पप्पा की तरह नहीं जो तुम्हारी दिलाई गई मोटरसाइकिल से चुप रहना सीख लिए हैं... या फिर दादी की तरह नहीं जो उस रद्दी वकील के पैसों से खरीदी गई अपनी नई आँखों से हर देखी को अनदेखी कर जाती हैं। मुझमें हौसला है, मेरे पास हिम्मत है... और तुम यह भी जान लो कल ही से मैं सरकारी अपने उसी पुराने रियायती स्कूल में जाना शुरू कर दूँगा। अब मैं वहीं पढ़ूँगा। तुम्हारी खैरात वाले इस नए स्कूल में नहीं।"

"मतलब?" माँ हड़बड़ाई थीं और उनके हैंडबैग के पट्टे उनके कंधे से नीचे फिसल लिए थे, "तू अपनी मरजी चलाएगा अब... मगर याद रख, न तो तेरा समय अभी शुरू ही हुआ है और न ही मेरा समय पूरा।"

"सैक्रेटरी साहिबा..." बाहर दरवाजे पर बृजलाल फिर आन खड़ा हुआ था, "ठाकुर साहब मेरे मोबाइल पर बवाल मचाए हैं। उन्हें बहुत जल्दी है..."

माँ ने अपने हैंडबैग के पट्टे तत्काल अपने कंधे पर टिकाए थे और कमरे से बाहर निकल गई थीं - उस एसयूवी में सवार होने जो रजतसिंह के दफ्तर की ओर नहीं बल्कि रणविजय सिंह के फार्महाउस की ओर मुड़ जाने वाली थी। जिसे बीच रास्ते रुक जाना था - परिचित/अपरिचित उन हत्यारों को उस सेवन-सीटर में जगह देने के लिए जो माँ के दो टुकड़े कर देने वाले थे।

इसे आप आदर्श वाक्य समझें या फिर भरत वाक्य, मगर अंत में मैं इतना जरूर बताना चाहता हूँ कि माँ के शव की पहचान के बाद जब माँ के मृत्यु-कर्मकांड आयोजित किए गए थे तो दादी अपने सिर पर दुहत्थड़ मारकर खूब रोई थीं - "पगली

समझती थी ऊपर से वह दो सिर लिखवा कर लाई थी - एक कोई अलग भी कर देगा तो भी वह बची रहेगी।"

और पप्पा फफक कर बोल उठे थे - 'उसकी सूरत उसे ले डूबी...'

और मैं ठिठक गया था। उस एक पल के लिए माँ मेरे सामने साकार आन खड़ी हुई थीं - अपनी सुडौल काया, चिकनी त्वचा, ऊँचे माथे, हिरणी जैसी बड़ी-बड़ी आँखों, नुकीली नाक, छोटी ठुड्डी तथा संकुचित जबड़ों के साथ।

तो क्या पप्पा सही कह रहे थे? माँ की सूरत ही रजतसिंह को उनके पास लाई थी? जिसने उनकी ऊँची बोली लगा कर माँ के अंदर 'ज्यादा' की ललक पैदा की थी? उन्हें 'थोड़े' से दूर ले जाकर 'सब कुछ' पा लेने की ख्वाहिश दी थी? और दो सहायक नदियों की भाँति पप्पा और दादी भी माँ के साथ उस खुले सागर की ओर बढ़ लिए थे?

—— X ——